गा कोकिल, बरसा पावक कण - सुमित्रानंदन पंत

गा, कोकिल, बरसा पावक-कण!
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन,
ध्वंस-भ्रंस जग के जड़ बन्धन!
पावक-पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन!

गा, कोकिल, भर स्वर में कम्पन!
झरें जाति-कुल-वर्ण-पर्ण घन,
अन्ध-नीड़-से रूढ़ि-रीति छन,
व्यक्ति-राष्ट्र-गत राग-द्वेष रण,
झरें, मरें विस्मृति में तत्क्षण!
गा, कोकिल, गा,कर मत चिन्तन!
नवल रुधिर से भर पल्लव-तन,
नवल स्नेह-सौरभ से यौवन,
कर मंजरित नव्य जग-जीवन,
गूँज उठें पी-पी मधु सब-जन!

गा, कोकिल, नव गान कर सृजन!
रच मानव के हित नूतन मन,
वाणी, वेश, भाव नव शोभन,
स्नेह, सुहृदता हो मानस-घन,
करें मनुज नव जीवन-यापन!
गा, कोकिल, संदेश सनातन!
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन,
वह न देह का नश्वर रज-कण!
देश-काल हैं उसे न बन्धन,
मानव का परिचय मानवपन!
कोकिल, गा, मुकुलित हों दिशि-क्षण!